अध्याय एक

समकालीन हिन्दी उपन्यास और स्त्री विमर्श: नयी दिशाएँ एवं उपलब्धियाँ

उपन्यास एक ऐसी श्रेष्ठ विधा है, जिसमें मानव जीवन और समाज यथा-तथा प्रतिबिम्बित एवं प्रतिफलित होती है और उसमें मानव जीवन की किसी न किसी समस्या या घटना का ज़िक्र होना स्वाभाविक है। हिन्दी साहित्य के गद्य विधा में उपन्यास अब तक की प्रगतिशील विकास परम्परा को समृद्ध, अत्यन्त लोकप्रिय, सशक्त एवं श्रेष्ठ विधा बनाने में सक्षम रहे हैं, जिसमें समकालीन लेखिकाओं की अहम भूमिका रही हैं।

सन १९६० के बाद के साहित्य उत्तरोत्तर विकसित होती गई है। यद्यपि उपन्यास के विकास की प्रारम्भिक दशा एवं दिशा की श्रीवृद्धि केलिए तूलिका चलानेवाली लेखिकाएँ उपन्यास को सम्पन्न करने में पुरुष लेखकों के साथ सक्रिय भागीदारी निभाने में सशक्त श्रेणी बनाई हैं। जिससे अपनी अस्तित्व, अस्मिता बोध, आत्म-चेतना, आत्म-गौरव, आत्मा-सम्मान, समता, समानाधिकार के प्रति स्त्री की सजगता स्वातंत्रयोत्तर कालीन साहित्य में उभरने लगीं।

समकालीन लेखिकाएँ तदयुगीन परिस्थितियों के आलोक में महिला जीवन के विभिन्न पहलुओं को सटीकता और गहरी समझ के साथ चित्रित करती हैं। उनकी रचनाएँ साहित्य को नई भाषा, नया पाठ और नई दिशा देने में सक्षम हुई हैं। स्त्री का प्रश्न न केवल स्त्री की स्वतंत्रता एवं अस्तित्व पर केन्द्रित है, बल्कि मानवीय दृष्टिकोण से भी जुड़ा है। आधुनिकता और उत्तर-आधुनिकता के दबाव में कुछ नई परिस्थितियाँ और प्रवृत्तियाँ पुरानी सामाजिक संरचना को मिटाकर अपनी जगह माने लगीं। 'स्व' के प्रति सजगता, अपने अस्तित्व एवं अधिकार की चेतना स्त्री विमर्श की मुख्य शक्ति है जो समकालीन उपन्यास में प्रखर-से-प्रखतर होती गई हैं।

स्त्री विमर्श समकालीन विचार चिन्तन है जो युग-युग में होते आए शोषण और दमन के प्रति पनपी स्त्री चेतना ने ही स्त्री विमर्श को जन्म दिया। महिला उपन्यासकारों की

रचनाओं में स्त्री स्वत्व के आत्मबोध, अस्तित्वबोध, स्वतंत्रताबोध से उत्पन्न विडम्बनाएँ, दर्द, अकेलापन, संत्रास एवं अन्य समस्याएँ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत होने लगीं। अस्तित्ववादी दर्शन के उद्भव के कारण औद्योगीकरण, पूंजीवादी व्यवस्था और दो महायुद्धोपरान्त परिवेश भी शामिल हैं। वैज्ञानिक दुनिया में नए आविष्कारों और प्रौद्योगिकी के विकास तथा औद्योगीकरण और परिणामी शहरीकरण की प्रक्रिया के कारण आधुनिकीकरण ने तेज़ी से गति पकड़ी।

1.1 समकालीनता

अपने समय के साथ का सार्थक सरोकार ही समकालीनता है। समकालीनता को प्रासंगिकता, तात्कालिकता और आधुनिकता से जोड़ा गया है और उनका पर्याय माना जाता है। कभी-कभी इसका दायरा अनावश्यक रूप से बढ़ाया गया है और कभी-कभी बेहद सीमित कर दिया गया है। "समकालीनता का तात्पर्य एक ही समय में रहना या होने का अर्थ निहित है, जो अंग्रेज़ी भाषा के 'कॉनटेम्परेरी' (Contemporary) का हिन्दी पर्याय है। संस्कृत व्याकरण में 'सामयिकता' में 'सम्' उपसर्ग जोड़ने से समसामयिकता का निर्माण माना जाता है।" [1]

व्युत्पत्तिशास्त्र की दृष्टि से 'समकालीन' का अर्थ है 'एक ही काल का', इस प्रकार समकालीनता का एक छोर आधुनिकता से और दूसरा छोर समकालीनता से सम्बन्धित है। समकालीनता की भूमि है 'आज', वर्तमान समय का परिदृश्य एवं घटनाएँ। लेकिन ये 'आज' न बीते हुए कल से कटा है, न आने वाले कल से; बल्कि यह वर्तमान पर केन्द्रित दृष्टि है जो अतीत और भविष्य से जुड़ती है और आगे का रास्ता दिखाता है।

1.1.1 समकालीनता : अर्थ एवं स्वरूप

समकालीन शब्द के अपने आप में अनेक अर्थ हैं। यद्यपि यह कालानुक्रमिक है, फिर भी इसका प्रयोग साहित्य में विशेष रूप के सन्दर्भ में किया जाता है। साहित्य में जब भी इसका प्रयोग होता है तो उसका सम्बन्ध समय और प्रवृत्ति दोनों से होता है। कहना न होगा

कि हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में समकालीन साहित्य का विशेष महत्व है जो बड़े पैमाने पर साहित्य और समाज के प्रश्नों को उठाता है।

कोशगत अर्थ में- "समकालीनता और समसामयिकता को अंग्रेज़ी के 'कंटम्प्रोरेनिटी' (Contemporaneity) अथवा को-ईवाल (Coeval) का समानवाची माना गया है जिसका अर्थ है, उस समय या कालखण्ड में होने वाली घटना या प्रवृत्ति या एक ही कालखण्ड में जी रहे व्यक्ति।"[2]

" 'समकालीन' एक संस्कृत शब्द है, जो 'काल' शब्द में 'सम्' उपसर्ग और 'इन' प्रत्यय के योग से बना है। दूसरे अर्थ में 'समकालीन' शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है 'सम' + 'कालीन', जिसका अर्थ है 'एक ही समय से' अर्थात् 'एक ही समय में'। 'प्रामाणिक विश्व कोश' में समकालीन शब्द का अर्थ 'एक ही समय में घटित होना' या 'वर्तमान समय' आदि दिया गया है।" [3]

1.1.2 समकालीनता : परिभाषा

विश्वम्भरनाथ उपाध्याय का विचार है कि " 'समकाल' शब्द यह बताता है कि काल के इस प्रचलित खंड या प्रवाह में मनुष्य की स्थिति क्या है इसे यूँ भी कह सकते है कि मनुष्य की वास्तविक स्थिति देखकर उसे अंकित चित्र करके ही हम समकालीनता की अवधारणा को समझ सकते है। समकालीनता अपने काल की समस्याओं और चुनौतियों का मुक़ाबला करता है। समस्याओं और चुनौतियों में भी केन्द्रीय महत्व रखने वाली समस्याओं की समझ से समकालीन उत्पन्न होती है।" [4]

नरेन्द्र मोहन मानते हैं कि "समकालीनता का अर्थ किसी कालखण्ड या दौर में व्याप्त स्थितियों और समस्याओं का चित्रण भर नहीं है, बल्कि उन्हें ऐतिहासिक अर्थ में समझना, उनके मूल स्त्रोत तक पहुँचना और निर्णय ले सकने का विवेक आर्जित करना है। समकालीनता तात्कालिकता नहीं है।" [5]

गंगा प्रसाद विमल इसे प्रासंगिकता से जोड़ते हैं और समकालीनता को प्रवृत्तिगत मानते हैं, "समकालीन का अर्थ यह नहीं कि दो व्यक्ति एक विशेष कालखण्ड में जी रहे हो और संयोग से रचनाशील भी है। जिस समकालीनता की बात की जा रही है उसका शब्दार्थ के धारण से सम्बन्ध नहीं है अपितु वह जीवन बोध के आधार पर समानधर्मी रचनाकारों के बोध की समानधर्मिता है।" [6]

1.2 समकालीन महिला उपन्यास लेखन की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

बीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में साहित्यिक विधा में अर्थात् साहित्य को समझने के ढंग में प्रभावात्मक परिवर्तन हुआ है। एक ओर यह परिवर्तन हिन्दी साहित्य की दृष्टि से अत्यंत गुणात्मक भी है। जिसमें एक दौर में दलित-विमर्श, आदिवासी-विमर्श, स्त्री-विमर्श आदि ने न केवल साहित्य को समझने का एक नया नज़रिया पेश किया, बल्कि साहित्य में सार्वजनिक जीवन से जुड़ी वास्तविकताओं, समस्याओं और परेशानियों को उजागर करने का आदर्श को प्रतिस्थापित किया हैं। इसमें आम लोगों के जीवन दर्शन और आदर्शों को भी एक नये आन्दोलन के रूप में स्थापित किया गया। सामाजिक स्तर पर आधारित उपरोक्त सभी विमर्शों में से 'स्त्री विमर्श' एक ऐसा विमर्श है जिसने पूरे विश्व में हलचल मचा रखी है।

समकालीन युग के उपन्यासों में नई जीवन दृष्टि और भाषा के नये रूप मिलते हैं। इनमें से कुछ उपन्यासों में आधुनिकतावादी मूल्य चेतना के साथ-साथ नई चेतना भी दृष्टिगोचर होते हैं। न कुछ अपूर्व है न ही अलौकिक, न कुछ पावन है, न कुछ विलक्षण, न ही कुछ दार्शनिक है न कुछ आध्यात्मिक। ये उपन्यास बिना किसी समाधान की पेशकश के खुले सिरे वाले होते हैं। इसका कारण यह है कि आज के समय में आदर्शों और नैतिकता से सभी समस्याओं का समाधान सम्भव नहीं है।

साहित्य अब उस रचनात्मकता की ओर बढ़ चुका है जिसे उत्तर-आधुनिकता कहा जाता है। समकालीन उपन्यास वर्तमान समय और समाज को उजागर करते हैं। इन उपन्यासों का विश्लेषण पुरानी समीक्षाओं के आधार पर नहीं किया जा सकता बल्कि उत्तर-

आधुनिकता के आधार पर ही हम नये उपन्यासों को समझकर वर्तमान समय और समाज को समझ सकते हैं।

समकालीन हिन्दी उपन्यास यथार्थ की ठोस ज़मीन पर खड़ा है। वह वर्तमान की चुनौतियों और समस्याओं को अपने अन्दर लेकर आगे बढ़ रहे हैं। सन १९८० के बाद दुनिया भर में अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर परिवर्तन की गति इतनी तेज़ हो गई कि इसने जीवन की सामान्य गति को बाधित कर दिया। इसी अवधि के दौरान वैश्वीकरण ने हमारे जीवन पर नए मूल्यों को थोपना शुरू किया। वर्तमान स्थिति ऐसी है कि सामाजिक जीवन में कोई भी ऐसा नहीं बचा है जो वैश्वीकरण के जाल में न फँसा हो।

इस दौरान दलित एवं महिला मुक्ति आन्दोलनों को प्राथमिकता देने वाले कई उपन्यास लिखे गये जिसका मूल कारण स्वत्वबोध की पहचान था। वर्तमान समय में साम्प्रदायिकता अपनी तमाम जटिलताओं के साथ सामाजिक जीवन में व्याप्त है तथा पर्यावरण प्रदूषण एवं विकास की अपरिपक्व दृष्टि के कारण प्रकृति का विनाश भी वर्तमान समय की वास्तविकता है। लेकिन इन तमाम अवांछनीय परिस्थितियों और भीषण संकटों के बावजूद हिन्दी उपन्यासकारों ने अपनी सचेत और सजग रचनात्मकता का परिचय दिया हैं। उन्होंने सामाजिक जीवन के प्रति अपना गहरा सरोकार बनाये रखने में सफल रहे और उनके उपन्यासों में वर्तमान स्थिति का यथार्थ चित्रण भी मिलता है।

इस दौर के हिन्दी उपन्यास वैश्वीकरण या बाज़ारवाद, उपभोक्तावाद, आज़ादी से मोहभंग, चीज़ों की महंगाई, चुनाव की समस्याएँ, सरकार की असफलताएँ, नैतिकमूल्यों का पतन, मीडिया एवं जनसंचार माध्यमों का दुरुपयोग, भ्रष्टाचार, धार्मिक कट्टरता का आधिक्य, राजनीति की अव्यवस्था, स्त्री की विभिन्न प्रकार की ज्वलंत समस्याएँ, दलितों के प्रति अत्याचार, पारिवारिक विघटन, साम्प्रदायिकता, परिस्थितिजन्य जागरूकता और स्त्री विमर्श आदि समकालीन साहित्य की नींव डालने में सक्षम निकले।

1.2.1 भूमण्डलीकरण (वैश्वीकरण) एवं पर्यावरण सजगता

अंग्रेज़ी शब्द 'ग्लोबलाइज़ेशन' के लिए हिन्दी में 'भूमण्डलीकरण' और 'वैश्वीकरण' शब्दों का प्रयोग किया जाता है। 'वैश्वीकरण' शब्द में 'भू' का अर्थ है 'भूमि' और 'वैश्वीकरण' का अर्थ है 'सम्मिलित करना', तो इसका मतलब है कि 'पूरा विश्व एक साथ' आ रहा है।

प्रख्यात वैज्ञानिक प्रो. यशपाल भूमण्डलीकरण की अपसंस्कृतीकरण से चिन्तित नज़र आते हैं उनका मानना है कि "भूमण्डलीकरण का अर्थ यह नहीं है कि यह सब लोगों के लिए बराबर है। इसमें 'वसुधैव कुटुम्बकम्' जैसी बात बिल्कुल नहीं है। भूमण्डलीकरण एक स्वेच्छाकारी प्रक्रिया है जिसके नियमों का पालन हमें करना पड़ेगा और हम सबको उसके पीछे चलना पड़ेगा। ये यह भी तय करेंगी कि हमारी स्थितियाँ कैसी होगी। उन्हें कैसे होनी चाहिए। आपको अनुकूलित किया जाए।" [7]

वैश्वीकरण साम्राज्यवाद का एक नया रूप है जो विगत बीस वर्षों से काफी तेज़ी से चल रही है। भारत लम्बे समय तक अंग्रेज़ों द्वारा उपनिवेश रहा, जिसके कारण वर्तमान समय में उपनिवेशवाद का स्वरूप बदल गया है और समकालीन हिन्दी उपन्यासकारों ने भी हमें वैश्वीकरण की तमाम गम्भीर जटिलताओं से परिचित कराने का प्रयास किया है। भूमण्डलीकरण से उत्पन्न 'उपयोगिता की मानसिकता' के प्रति विरोध की भावना समकालीन हिन्दी उपन्यासों में द्रष्टव्य है। विनोद कुमार शुक्ल का 'नौकर का कमीज़', प्रियंवद का 'परछाई नाच', उदयप्रकाश का 'पीली छतरीवाली लड़की', रवीन्द्रवर्म का 'निन्यानबे', चित्रा मुदगल के 'एक ज़मीन अपनी', 'आवाँ' आदि कुछ उल्लेखनीय उपन्यास हैं जिसमें भूमण्डलीकरण के विभिन्न आयामों का चित्रण किया गया है।

पर्यावरण प्रदूषण एवं प्रकृति का शोषण समकालीन जीवन की ज्वलंत समस्याओं में से एक है। विकास के नाम पर प्रकृति का विनाश और पर्यावरण प्रदूषण सारी हदें पार कर रहा है। समकालीन हिन्दी उपन्यासकारों ने प्रकृति के शोषण और प्रदूषण के विरुद्ध अपना

प्रबल विद्रोह बहुत सजगता से व्यक्त किया है। वीरेन्द्र जैन का 'डूब', संजीव का 'धार', मैत्रेयी पुष्पा के 'बेतवा बहती रही', 'इदन्नमम' आदि परिस्थिति सम्बन्धित कुछ उल्लेखनीय रचनाएँ हैं।

वैश्वीकरण महिलाओं को कामयाब की स्थिति में छोड़ने से ज़्यादा उनके लिए नुकसानदेह साबित होता है। स्थानीय पूँजीपति का अन्तर्राष्ट्रीय पूँजीपति से सीधा सम्बन्ध होता है और जब तक एक कामकाजी महिला श्रम की शास्त्रीय स्पष्टता को नहीं समझती, वह शोषण का विरोध नहीं कर सकती। घर से बाहर सार्वजनिक स्थानों पर स्त्रियों ने अपनी स्थिति पुरुषों के बराबर स्थापित कर ली है, लेकिन वहाँ भी वे दोयम दर्जे पर ही हैं।

1.2.2 भूमण्डलीकरण और आर्थिक उदारीकरण

भूमण्डलीकरण एक प्रकार का बड़ा विचार और प्रस्ताव है जिसके कारण हिन्दी की तमाम साहित्यिक, राजनीतिक और आर्थिक बहसों में यह विचार जाने-अनजाने सामने आता रहता है। भूमण्डलीकरण और आर्थिक उदारीकरण के माध्यम से अमेरिका जैसी महाशक्तियों ने पूरी दुनिया पर अपना जाल बिछा लिया है। सन १९९० से पहले किसी ने सपने में भी नहीं सोचा था कि महाशक्तियाँ और उनका विश्व बैंक करोड़ों लोगों के सपनों को इस तरह अपनी तिजोरी में बन्द कर देगा। पिछली सदी के आखिरी दशक उनके लिए सबसे अच्छा मौका था जब दुनिया की दूसरी ताकत सोवियत संघ का विघटन हो गया, उस विघटन ने उन लोगों के सपने छीन लिए जो अपने अधिकारों और दुनिया को शोषण से मुक्त कराने के लिए प्रतिबद्ध थे। तब अमेरिका के सामने खुला मैदान था जहाँ वह जो चाहे पारी खेल सकता था। भूमण्डलीकरण और आर्थिक उदारीकरण का नारा लगाकर उन्होंने बड़ी चतुराई से एक ही समय में सभी को अपने कब्जे में ले लिया।

भूमण्डलीकरण की अवधारणा सभी क्षेत्रों में खुलेपन की वकालत करती है। उदारीकरण खुला व्यापार और आर्थिक क्षेत्र में 'लाइसेंसिंग' की समाप्ति चाहता है। सामाजिक जीवन चयन की स्वतंत्रता या खुलापन देकर नैतिकता और अनैतिकता से सम्बन्धित

मान्यताओं को विशेष महत्व नहीं देता है। भूमण्डलीकरण और आर्थिक उदारीकरण के परिणामस्वरूप नई स्त्री एक नई छवि प्रस्तुत कर रही है और उपभोक्ता बनती जा रही है। आज के युग की जीवित महिलाएँ 'शो-पीस' बन रही है यानि समाज में उनकी छवि बिम्बों की है जो अपनी सुन्दरता और शरीर बेचकर अमीर वर्ग में शामिल होना चाहती हैं। वैश्वीकरण ने ही महिलाओं को इस भ्रम में फँसा दिया है कि वे सशक्त हैं और कोई भी निर्णय लेने में सक्षम हैं।

डॉ. रोहिणी अग्रवाल के अनुसार- "आर्थिक सुधारों के तहत उदारीकरण और वैश्वीकरण में बहुराष्ट्रीय निगमों के साथ बाज़ार के विस्तार को देश की अर्धभूखी, अर्धसोई, अर्धशिक्षित जनता पर लाड़ दिया है। रंगीन रोशनियों की चकाचौंध और मिस यूनिवर्स-मिसवेल्ड जैसी खूबसूरत उपलब्धियों ने देखते ही देखते भारत जैसे राष्ट्र को विदेशी कासमैटिक इंडस्ट्री के सबसे बड़े बाज़ार में बदल दिया है।" [8]

भूमण्डलीकरण और आर्थिक उदारीकरण की अमानवीय नीतियाँ पूरे पर्यावरण को प्रभावित कर रही हैं अत: भूमण्डलीकरण पूंजीवादी व्यवस्था की देन है। आर्थिक उदारीकरण के माध्यम से पूंजीवाद पूरी दुनिया पर आधिपत्य स्थापित कर चुके है और भूमण्डलीकरण की नींव पर जिस विश्व ग्राम की संकल्पना की जा रही है उसमें मानवता के लिए कोई जगह नहीं है क्योंकि यह पूरी प्रक्रिया व्यापार एवं शोषण व्यवस्था पर आधारित एक भोग प्रधान आर्थिक प्रक्रिया है।

1.2.3 उपभोक्तावाद का प्रसार

उपभोक्ता जितना अधिक उपभोग करेंगे, उन्हें उतनी ही अधिक खुशी मिलेगी, यही उपभोग संस्कृति का आदर्श है। वैश्वीकरण ने हर चीज़ को उपभोग के दायरे में ला दिया है जिससे धर्म, साहित्य, कला, संगीत, सांस्कृतिक सम्बन्ध यहाँ तक कि स्वयं मनुष्य भी इसी श्रेणी में आते हैं और सभी वस्तुओं का उपभोग लोगों की रुचि के अनुसार किया जाता है। उपभोग संस्कृति में प्रत्येक वस्तु को मापकर वैश्विक बाज़ार में पेश किया जाता है, यही

कारण है कि आज के युवा उपभोग संस्कृति के पीछे भागते हैं, क्योंकि एक चीज़ खरीदने पर उन्हें दूसरी चीज़ मुफ्त में मिल जाती है। यह इसलिए दिया जाता है ताकि कोई चीज़ों का आनन्द ले सके।

डॉ. रोहिणी अग्रवाल के अनुसार "उपभोक्तावादी संस्कृति ग्लैमर, स्टेटस और ज़रूरत बनकर इस तरह घरों में घुस आई है कि मासिक बजट के बहुत बड़े हिस्से पर कब्जा कर बैठी है। डरा धमकाकर नहीं बल्कि मामूली किस्तो के नाम पर बड़ी-बड़ी सुविधाओं का चुग्गा डालकर।"[9] आज हम जिस नए भारतीय मध्यम वर्ग की बात करते हैं, उस पर उपभोक्तावाद का असर सबसे ज़्यादा दिखाई देता है, जिस पर पिछले दो दशकों से पूरी दुनिया की निगाहें टिकी हुई हैं। 'कारों' से लेकर कपड़ों तक, शराब से लेकर सौन्दर्य प्रसाधनों तक और 'पेप्सी-पिज़्ज़ा-कुरकुरे' से लेकर 'लैपटॉप' और 'मोबाइल' तक, जिन विदेशी कम्पनियों की सेवा में हर दिन नए 'ब्रांड', नए उत्पाद और नए विज्ञापन बाज़ार में उतारे जा रहे हैं।

1.2.4 तकनीकी क्रान्ति

तकनीकी क्रान्ति के कारण आज हमारे पास एक से बढ़कर एक शानदार 'शॉपिंग मॉल' और पी. वी. आर. हैं जो हमारे शहर में हर दिन खुल रहा है। जिस मध्यवर्ग को हम खाते-पीते, खरीदारी करते देखते हैं जो ऐसी अंग्रेज़ी बोलता है जिसे न तो इंग्लैंड ने जन्म दिया और न ही अमेरिका ने, जिसे सिर्फ दस-बारह साल पहले हमारे 'टीवी चैनलों' के तेज़ विज़न ने बनाया था जिसका व्याकरण अभी तक विस्तार से नहीं लिखा जा सका है। समसामयिक तकनीकी एवं इलेक्ट्रॉनिक क्रान्ति के कारण आज का युग काफी बदल रहा है। ट्राफलर के अनुसार- "तकनीकी क्रान्ति के कारण आर्थिक सम्बन्ध बदल जाते है, बदल रहे हैं, काम की प्रकृति बदल रही है, राजनीति का चेहरा बदल रहा है, भूमिकाएँ बदल रही हैं, संस्कृति के उपादान एवं उनके काम बदल रहे हैं, बौद्धिक औजार बदल रहे हैं और इस समूचे बदलाव के ठोस कारण हैं जो मार्क्स के शब्दों में-व्यक्तिगत इच्छाओं से पड़े सक्रिय है।"[10]

1.2.5 मीडिया का प्रभाव

आज का युग मीडिया का युग है और मीडिया प्रचार-प्रसार का एक सशक्त माध्यम है जिसके कारण मीडिया का क्षेत्र व्यापक रूप से विस्तारित हो रहा है। मूल्यों के संक्रमण काल में मीडिया ने समाज को आधुनिक युग की ओर ले जाने तथा तार्किक एवं वैज्ञानिक विचारों के प्रसार में सहायक भूमिका निभाई है। हर्बर्ट मार्क्युज़ के अनुसार- "मीडिया मनुष्य को इकहारा और मानसिक गुलाम बनाने का माध्यम है।"[11]

मीडिया लोगों की मनोवृत्ति परिवर्तित करने में अहम भूमिका निभाती है। इसी मीडिया के सहयोग से बाज़ार लगातार विस्तार की ओर बढ़ रहा है और मीडिया के माध्यम से नई-नई वस्तुओं का प्रदर्शन कर अपनी इच्छाओं को उजागर कर रहा है और अपनी मानसिकता को उत्पाद के अनुरूप ढाल रहा है। मिथिलेश्वर के अनुसार- "बाज़ार की शक्ति और स्त्रोत के संचालन का माध्यम तत्कालीन मीडिया है बाज़ार ने लगभग मीडिया पर अपना आवश्यकताओं के नाम पर लगातार जो चीज़ें परोसी जा रही हैं। जाने-अनजाने हम उनकी दासता के शिकार होते जा रहे हैं ...हमारी मर्ज़ी और प्राथमिकता अपने हिसाब से अब वे तय करने लगे हैं।"[12]

युवा पीढ़ी का सांस्कृतिक संसार बदल रहा है, बच्चे और महिलाएँ भी इसके प्रभाव से अछूते नहीं रहे हैं। अधिकतर बच्चे विज्ञापनों और धारावाहिकों से सीधे तौर पर प्रभावित होते हैं और उनके व्यवहार में बदलाव साफ नज़र आता है। मीडिया ने पूरे सामाजिक परिदृश्य को बदल दिया है, आज परिवार के भीतर की सीमाएँ कराह रही हैं, जहाँ खुजराहो का सम्पूर्ण कामशिल्प घरों के अन्दर कमरों तक पहुँच गया है।

मीडिया ने न केवल स्त्री शरीर को केन्द्र में ला दिया है बल्कि मानवीय रिश्तों का भी व्यवसायीकरण कर दिया है। विज्ञापन के माध्यम से वह एक ऐसी छवि बनाती है जिसमें उसके स्त्रीत्व का सार मानवीय गुणों में नहीं बल्कि किसी विशेष उत्पाद में निहित होता है। आज के युग में हर व्यक्ति मीडिया का उपयोग अपने हिसाब से कर रहा है, दरअसल

मीडिया ने आज मानवीय रिश्तों के पारम्परिक अर्थ और मानवीय अर्थ को बदल दिया है। आपसी भाईचारे और करुणा के लिए कोई जगह नहीं बची है, यही कारण है कि आज की पीढ़ी की भावनाएँ विलुप्त होने के कगार पर हैं और यह सब मीडिया की देन है।

1.2.6 साम्प्रदायिकता

साम्प्रदायिकता वर्तमान समय की एक कड़वी सच्चाई एवं जटिल समस्या है। धर्म और राजनीति के गठजोड़ ने इस समस्या को और अधिक कष्टकारी बना दिया है। साम्प्रदायिकता वास्तव में धर्म का एक संकीर्ण या सीमित रूप है जो देश की एकता के लिए घातक चुनौती है, वस्तुतः यह अंग्रेज़ों द्वारा अपनाई गई 'दो राष्ट्र नीति' का परिणाम है। साम्प्रदायिकता के विभिन्न आयामों का चित्रण समकालीन हिन्दी उपन्यासों की प्रमुख प्रवृत्ति है। समकालीन हिन्दी उपन्यासों ने साम्प्रदायिक घृणा और धार्मिक कट्टरता को जन्म देने वाली स्थितियों के चित्रण में गहरी संवेदनशीलता दिखाई है, उनका मानना है कि वास्तव में फासीवाद और साम्प्रदायिकता में कोई अन्तर नहीं है और इसका आम लोगों के जीवन से कोई लेना-देना नहीं है। भगवानदास मोरवाल का 'काल पहाड़', प्रियंवद का 'वे वहाँ कैद है', गीतांजली श्री का 'हमारा शहर उस बरस', कमलेश्वर का 'कितने पाकिस्तान', मंजूर एहतेशाम का 'सोखा बरगद', भगवान सिंह का 'उन्माद' आदि उपन्यासों में साम्प्रदायिकता के विभिन्न आयामों का चित्रण मिलते हैं।

1.2.7 आतंकवाद

आतंकवाद विभिन्न देशों में आम चर्चा का विषय बनता जा रहा है जो किसी भी दिन, किसी भी समय हो सकता है, कतिपय कारणों से विश्व के किसी न किसी भाग में आतंकवादी हमलों में मारे गये लोगों के बारे में समाचार पत्रों, रेडियो तथा टेलीविज़न पर समाचार प्रकाशित एवं प्रसारित होते रहते हैं। आतंकवाद पैदा करने के पीछे किसी भी संगठन या समूह का एक निश्चित लक्ष्य होता है, वह राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक या धार्मिक हो सकता है। आतंकवाद का सर्वप्रथम प्रयोग ब्रूसेल्स में दण्ड विधान को समेकित करने के लिए

सन १९३१ में बुलाए गए तीसरे सम्मेलन में किया गया था। जिसके अनुसार आतंकवाद का अभिप्राय "जीवन, भौतिक अखण्डता अथवा मानव स्वास्थ्य को खतरे में डालने वाला या बड़े पैमाने पर सम्पत्ति को हानि पहुँचाने वाला कार्य करके जानबूझकर भय का वातावरण उत्पन्न करना।"[13] आतंकवाद को मानव सभ्यता के खिलाफ खतरा मानते हुए सभी को एकजुट होकर इससे लड़ना होगा। न केवल भारत, बल्कि इसके अत्याचारों को प्रत्यक्ष रूप से झेलने वाले देशों-अमेरिका और रूस आदि को भी आतंकवाद को जड़ से उखाड़ने की पहल करनी चाहिए। आतंकी संगठनों की हरकतें इस बात का संकेत दे रही हैं कि आतंकवाद का खूनी शिकंजा पूरी तरह से कसता होता जा रहा है। आज पूरा विश्व भविष्य को लेकर चिन्तित है और आतंकवाद से लड़ने के लिए कमर कस रहा है, लेकिन मानवता के सुसंस्कृत प्रयास अब तक क्रूर और बेलगाम आतंकवाद पर काबू नहीं पा सके हैं।

1.2.8 दलित विमर्श

दलित विमर्श समकालीन हिन्दी उपन्यास की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। समकालीन हिन्दी दलित साहित्य सदियों से प्रताड़ित लोगों की पीड़ा की अभिव्यक्ति है; लेकिन यह महज़ मूक अभिव्यक्ति नहीं है इसमें इनकार, नकार, विद्रोह और संघर्ष की आग भी शामिल है। समकालीन दलित हिन्दी उपन्यासों की एक विशेषता यह है कि इनके लेखक अधिकतर स्वयं दलित हैं, इसलिए समकालीन दलित उपन्यास वास्तविकता के बहुत करीब है, हालाँकि दलित साहित्य की अवधारणा को लेकर विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोग दलित लेखकों द्वारा लिखित साहित्य को ही दलित साहित्य मानते हैं। दूसरा समूह गैर-दलितों द्वारा लिखे गए साहित्य को दलित साहित्य मानने का पक्षधर हैं। लेकिन दलितों द्वारा लिखे गए उपन्यासों की विषयवस्तु में अनुभव की प्रामाणिकता है और उनकी रचना भोगे हुए यथार्थ पर आधारित है।

जयप्रकाश कर्दम के 'करुणा', 'छप्पर', सत्यप्रकाश का 'जस तास भई सबेर', प्रेम कपाड़िया का 'मिट्टी की सौगंध', मोहनदास नैमिशराय के 'मुक्तिपर्व', 'अपने-अपने पिंजरे',

शारंकुमार लिंबाले का 'अक्करमाशी', ओमप्रकाश वाल्मीकी का 'जूठन', सूरजपाल चौहान का 'तिरस्कृत' आदि इस समय के उल्लेखनीय दलित उपन्यास माने जाते हैं।

1.2.9 स्त्री विमर्श

आज का युग चर्चाओं और बहसों का युग है, जब किसी भी विषय पर चिन्तन, मनन एवं विचार किया जाता है तो वह चर्चा का रूप ले लेता है; ऐसे विमर्शों में प्रमुख है 'स्त्री विमर्श'। आज के बदलते समसामयिक परिप्रेक्ष्य में स्त्री विमर्श के प्रभाव से स्त्री सम्बन्धी मूल्यों में परिवर्तन आया है। प्रभा खेतान के अनुसार- "आज स्त्री ने सदियों की खामोशी तोड़ी है, उसकी नियति में बदलाव है। उसके व्यक्तिगत जीवन का उद्देश्य, दर्शन, उसका मन मिज़ाज सभी तो बदल रहा है।" [14]

स्त्री विमर्श उस साहित्यिक आन्दोलन को कहा जाता है जिसमें नारी अस्मिता को केन्द्र में रखकर स्त्री साहित्य का मौलिक सृजन किया गया है। अस्मिता सम्बन्धी अन्य विमर्शों की तरह स्त्री विमर्श हिन्दी साहित्य का प्रमुख विमर्श रहा है जो 'लैंगिक विमर्श' पर आधारित है। स्त्री विमर्श नारी मुक्ति से जुड़ी एक विचारधारा है जो नारी जीवन के दर्द के अछूते संसार को उजागर करने का अवसर प्रदान करती है।

स्त्रीवाद एक ऐसी विचारधारा है जिसमें महिलाओं के उत्पीड़न, शोषण, संघर्ष, हताशा आदि के विभिन्न रूपों का समुचित अध्ययन किया जाता है और यह शोषित एवं पीड़ित महिलाओं को मुक्ति दिलाने का प्रयास करती है। स्त्रीवादी चिन्तक न सिर्फ नारी अस्मिता, स्त्रीवाद, स्त्री विमर्श, स्त्री स्वतंत्रता, स्त्री जागृति, अधिकार, चेतना आदि को नारी विमर्श के रूप में समझ पा रहे हैं बल्कि स्त्री की अस्मिता की पहचान, स्वयं के प्रति चिन्ता, अस्तित्व की भावना और अपने अधिकारों को जताने का विचार ही इसकी नींव है।

स्त्री विमर्श आन्दोलन ने नारी सम्बन्धी विचारों एवं सिद्धान्तों को जन-जन तक पहुँचाने का प्रयास किया है। बदलती अस्मिता ने महिलाओं को अपने जीवन के बारे में

गहराई से सोचने का मौका दिया। इससे उन्होंने स्वयं को समाज के सामने लाया और अपनी समस्याओं को समाज के सामने रखा। अस्मिता की यही भावना नारी मुक्ति और नारीवाद की नींव बन गई है। हिन्दी साहित्य में महिलाओं द्वारा स्त्री-विमर्श की अभिव्यक्ति अपनी उत्कर्ष पर पहुँच रही है। यह प्रवृत्ति मध्यकाल में मीराबाई की भक्ति कविता से विकसित हुई और बीसवीं सदी की शुरुआत में सुभद्राकुमारी चौहान और महादेवी वर्मा के माध्यम से आगे बढ़ी और अब वर्तमान लेखकों द्वारा आगे बढ़ रही हैं, इनमें प्रमुख महिला लेखिका चन्द्रकान्ता का स्थान अनोखा हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में महिलाओं के पारिवारिक, सामाजिक और शारीरिक शोषण के साथ-साथ उनके मानसिक शोषण को भी तीखे स्वर में व्यक्त करने का प्रयास किया है।

समकालीन हिन्दी उपन्यासों में चित्रित महिलाएँ अपने अधिकारों के प्रति सचेत है शोषण के विरुद्ध अपना सशक्त विद्रोह प्रकट करने में हिचकती नहीं। समकालीन हिन्दी उपन्यासों में नारी चिन्तन के विभिन्न आयामों का यथार्थ अंकन उपलब्ध हैं। समकालीन नारीवादी उपन्यास की एक अन्य विशेषता है 'स्वयं नारियों का उपन्यास रचना के क्षेत्र में प्रवेश'। विगत दो दशकों में महिला लेखिकाओं की संख्या में काफी वृद्धि हुई है। यह वृद्धि केवल संख्यात्मक न होकर गुणात्मक भी रहीं।

1.3 महिला उपन्यास लेखन की पृष्ठभूमि - सामान्य परिचय

हिन्दी साहित्य के इतिहास में उपन्यास का एक विशिष्ट पहचान है। उपन्यास एक ऐसी लोकप्रिय साहित्यिक विधा है जिसके माध्यम से मानव जीवन का यथार्थ प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है, और यह एक ऐसी व्यापक कला है जो अन्य गौण कलाओं को भी अपने में समाहित कर लेती है। इस कला के अन्तर्गत व्यक्ति और समाज की विविध भावनाएँ और संवेदनाएँ तो होती ही हैं, साथ ही कई प्रकार की दृश्य घटनाएँ और विभिन्न प्रकार के पात्र भी हो सकते हैं। उपन्यासकार मानव जीवन से जुड़ी सुखद-दुखद किन्तु हृदयस्पर्शी घटनाओं का एक निश्चित तारतम्य के साथ अपनी निची शैली में व्यक्त करते हैं।

सृष्टि के आरम्भ से ही 'स्त्री' साहित्य सृजन का केन्द्र बिन्दु रही है और यह आज भी कायम है। प्राचीन काल से लेकर आज तक किसी भी साहित्यिक विधा में महिला पात्रों की संख्या बहुत अधिक है। हिन्दी लेखन के आरम्भिक समय में लेखिकाओं की संख्या बहुत कम थी। गिनी-चुनी महिला लेखिकाओं ने स्त्री-विडम्बनाओं और उनके द्वन्द्व को अपनी रचनाओं का विषय बनाया, लेकिन इसमें अपनी कोई स्वतंत्र दृष्टि विकसित नहीं कर पायी। हिन्दी साहित्य में बंग महिला की 'दुलाईवाली' (१९०७ ई.) कहानी से महिला लेखन का प्रारम्भ माना जाता है।

कहानियों की तुलना में महिलाओं में उपन्यास लेखन बहुत देर से शुरू हुआ और इस अंग में लेखिकाओं की संख्या भी बहुत कम थी। हिन्दी की प्रथम महिला उपन्यासकार को लेकर भी विद्वानों में गहरा मतभेद है। डॉ. ऊर्मिला गुप्ता ने प्रारम्भिक मौलिक उपन्यास लेखकों के नामांकन को कालानुक्रमिक प्रस्तुत किया। उन्होंने हिन्दी की पहली मौलिक उपन्यास लेखिका 'साध्वी सती पति प्राण उबला' को माना है, जिन्होंने १८९० ई. में 'सुहासिनी' नामक उपन्यास लिखा। डॉ. रमा नवले ने शैल कुमारी देवी को प्रथम महिला उपन्यासकार स्वीकार किया है। उपन्यासों की संख्या के आधार पर अधिकांश विद्वानों द्वारा स्वीकृत पहली महिला उपन्यासकार 'उषा देवी मित्रा' हैं। डॉ. रमा नवले लिखती है "शैल कुमारी देवी का 'उमासुन्दरी' उपन्यास महिला उपन्यासकार द्वारा लिखा गया प्रथम मौलिक उपन्यास है (१८६९)।"[15]

दूसरी महिला उपन्यासकार हैं सरस्वती गुप्ता, जिनका उपन्यास 'राजकुमार' १८९८ ई. में प्रकाशित हुआ था। इन दोनों उपन्यासों का उल्लेख डॉ. ऊर्मिला गुप्ता द्वारा लिखित 'हिन्दी कथा-साहित्य के विकास में महिलाओं की संयुक्तता' शीर्षक आलोचनात्मक गद्य में किया गया है। इसके अलावा डॉ. रमा नवले की आलोचनात्मक पुस्तक 'मृदुला गर्ग की कला साहित्य में महिलाएँ' में 'शैलकुमारी देवी' को प्रथम महिला उपन्यासकार की उपाधि दी गई। डॉ. रमा नवले का पहला मौलिक उपन्यास 'उमा सुंदरी' है जो १८६९ में प्रकाशित हुआ था।

इससे स्पष्ट होता है कि हिन्दी उपन्यास के विकास के प्रारम्भिक चरण के साथ-साथ महिला उपन्यास लेखन का कार्य भी धीमी गति से प्रारम्भ हुआ है।

प्रियंवदा देवी का 'कलयुगी परिवार का एक दृश्य' और 'लक्ष्मी', ब्रहमकुमारी दूबे का 'सौन्दर्य कुमारी', सुश्री सरस्वती गुप्ता का 'राजकुमार', रुक्मिणी देवी का 'मेम और साहब', लीलावती देवी का 'सती दमयन्ती' और 'सती सावित्री', गोपाल देवी का 'दयावती', हुक्म देवी गुप्त का 'गूढ भाव प्रकाश', तदनंतर शैलकुमारी देवी का 'उभा सुन्दरी', हेमन्त कुमारी चौधरी का 'आदर्शमाता' और 'जागरण', गिरिजा देवी का 'कमला कुसुम', यशोदा देवी का 'वीर पत्नी' आदि उपन्यास उल्लेखनीय हैं।

इन उपन्यासों में स्त्री की केवल करुणा, बलिदान, त्याग, पतिव्रत, धर्म के पालन, विनय, धैर्य, शिष्टाचार, सदाचार, घृकार्य में निष्ठा आदि का वर्णन अधिक मिलता हैं। इन लेखिकाओं के नारी पात्र अपरिपक्व और प्राचीन विचार धारा से ओतप्रोत है अतः इन उपन्यासों में मुख्यतः उपदेशों का ही आधिक्य देखने को मिलता है। ऊर्मिला गुप्ता के अनुसार- "उस युग में स्त्री शिक्षा का अभाव था, यहाँ तक कि नारी जाति, सुचारु गृह संचालन और संतान पालन जैसे व्यावहारिक ज्ञान में ही अपनी पारंगत न थी। स्वयं ये लेखिकाएँ, जो अपने युग की कुछ अधिक चेतनाशील महिला थी। अधिक शिक्षित न थी। यही कारण है कि इनके उपन्यासों का मुख्य लक्ष्य नारी को परिवार और समाज के प्रति धर्म-पालन की शिक्षा देता रहा है।" [16] इस युग की लेखिकाओं की रचनाओं में स्त्री अपनी अस्तित्व, अस्मिता और अधिकार की लड़ाई लड़ती नज़र आती है फिर भी वह पत्नी, माँ, परिवार, गृहणी की त्यागमय जीवन निभाती रह गयी हैं।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में कई महिला रचनाकारों की भागीदारी दर्शनीय है। इस समय महिला लेखिकाओं की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ गयी। उषा देवी मित्रा का 'वचन का मोल', 'पिया', 'जीवन की मुस्कान', 'पैंथचारी', 'सोहिनी', 'सम्मोहिता', 'नष्ट नीड़', श्रीमती कंचलता सब्बरवाल का 'मूक प्रश्न', 'भोली भूल', 'संकल्प', 'मूक तपस्वी', 'त्रिवेणी', 'भटकती आत्मा',

‘स्वतंत्रता की ओर’, ‘पुररुद्धार’, ‘अनचाहा’, ‘नया मोड’, ‘स्नेह के दावेदार’, ‘फूलों की सुगंध’, ‘काटों की चुंभन’, ‘एक बिखरी हुई लड़की’, श्रीमती सरोजनी देवी श्रीवास्तव कृत ‘समाज के अंगारे’, श्रीमती गिरिजादेवी कृत ‘कमला कुसुम’, श्रीमती शैल कुमारी कृत ‘उमा सुंदरी’, श्रीमती ताराबाई कृत ‘भाग्यचक्र अथवा निराशा प्रेमी’, श्रीमती उषारानी कृत ‘फँसी कैसे’, श्रीमती ज्योतिर्मयी ठाकुर कृत ‘मधुवन’, श्रीमती लक्ष्मी देवी कृत ‘शिवसती’, सुश्री शांतिलता अग्रवाल कृत ‘वनलता’, श्रीमती पूर्ण शशि देवी कृत ‘रात के बादल’, सुश्री वासंती देवी सेन कृत ‘दिलारा’, तेजरानी दीक्षित कृत ‘हृदय का काँट’, श्रीमती कुटुम प्यारी देवी सक्सेना कृत ‘हृदय की ताप’, सुश्री प्रभावती भटनागर कृत ‘पराजय’, श्रीमती शीला कृत ‘ग्रेजुएट लड़की’, सुश्री अरुणा कृत ‘रजनी’, श्रीमती आशा सहाय कृत ‘एकाकिनी’ आदि अनेक लेखिकाओं की उपन्यास इस काल में हुई हैं।

डॉ. ऊर्मिला गुप्ता का कथन है “विगत शताब्दियों में भारत में स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों को विशेष सामाजिक सुविधाएँ प्राप्त रही हैं, अतः साहित्य-क्षेत्र में उनकी प्रतिभा का यथोचित प्रसार हुआ है। इसके विपरीत स्त्रियाँ शिक्षा की अपर्याप्तता, अध्ययन की सीमाओं, कार्य-क्षेत्र में व्यापकता के अभाव, पारिवारिक उत्तरदायित्वों, समाज और परिवार के विरोध एवं वांछित प्रोत्साहन के अभाव के कारण साहित्य-रचना में उतनी कृतकार्य नहीं हो सकीं।”[17]

डॉ. उषा यादव ने महिला लेखन के बारें में लिखा है, “घर-परिवार के सारे दायित्वों को समेटते हुए और कभी-कभी को घर-बाहर के दोहरे उत्तरदायित्व को वहन करते हुए भी अपने भीतर घुमड़ती ‘चीख’ को शब्दबद्ध करने की विवशता का नाम ही महिला लेखन है। “यह एक निर्विवाद सत्य है कि स्त्री और पुरुष दोनों के बीच प्राकृतिक, जैविक अन्तर होने के बावजूद स्त्री की मानसिक शक्तियाँ और उसका ‘बोध’ विशिष्ट सिध्द हो चुका है। कला के वातावरणानुकूल सृजन में नारी को अपना एक अलग पहचान पहले से ही हिन्दी साहित्य में दिखाई दे रहा है। आज महिला लेखन को लेकर के काफी विवादास्मक स्थिति बन रही है।”

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत की जनता में नई आशा, आकांक्षा एवं चिन्ता जागृत हुई। महिला साहित्यकारों के अतिरिक्त पुरुष साहित्यकार भी भारतीय नारी समाज की ज्वलंत समस्याओं की ओर ध्यान देने लगे। आधुनिक महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में एक ऐसी महिला का सशक्त चित्रण किया गया है जिसने पितृसत्तात्मक दृष्टि से आगे बढ़कर परम्पराओं और रूढ़ियों को तोड़कर स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया और जो अपने संघर्ष में सफल रही और अपनी इच्छानुसार जीवन जीती रही। आज की महिलाएँ केवल भावनाओं के आधार पर जीवन जीने की बजाय व्यावहारिक दृष्टिकोण अपना चुकी हैं। वह पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने में विश्वास रखती हैं। इसका कारण यह है कि महिला लेखिकाओं ने मानव समाज के मूल में अपना स्थान बना लिया है। हिन्दी साहित्य के इतिहास के आरम्भ में इस क्षेत्र में मुख्यतः पुरुष ही थे अर्थात पुरुषों की तुलना में महिला लेखिकाओं की संख्या बहुत कम थी, लेकिन आजकल हालत काफी बदल गए हैं। महिला लेखिकाओं की संख्या दिन-ब-दिन पहले की तुलना में काफी तेज़ी से बढ़ रही है। इस समय की लेखिकाओं में अपने पूर्ववर्ती महिला लेखन की सीमा रेखा पार करने की अदम्य लालसा दिखाई देती है।

स्वतंत्रता के पूर्व की कुछ लेखिकाएँ स्वतंत्रता के बाद भी उपन्यास लिखती रहीं। जिनमें रजनी पनिकर, इंदुबाली, सौनरेक्सा, लीला अवस्थी, चन्द्रकिरण, बसंत प्रभा और अन्नपूर्ण तांगड़ी के नाम विशेष रूप से सामने आए। इस समय के सबसे श्रेष्ठ महिला उपन्यासकारों में मन्नू भण्डारी, शिवानी, कृष्णा सोबती और उषा प्रियंवदा का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनके अतिरिक्त अन्य उपन्यास लेखिकाओं में श्रीमती सरिता रानी, सुश्री आदर्श कुमारी आनन्द, सुश्री सुषमा भाटी, सुश्री दर्शाना, संतोष बाला 'प्रेमी', सुश्री मधुलिका, श्रीमती शकुंतला गडहोक, महाजन, श्रीमती विमल वेद, कान्ता सिन्हा, प्रकाशवती, लावण्य प्रभा राय, कुंबरानी तारा देवी, सुदेश 'रश्मि', सुश्री शकुंतला मिश्र, सुश्री संतोष सचदेवी, श्रीमती शीला शर्मा, सुश्री शकुंतला शुक्ल, सुश्री उर्मि, श्रीमती शिवरानी विशनोई, सत्यवती देवी

मैया उषा, कृष्ण रविकमल, मालती परुलकर, श्रीमती भारती विद्यार्थी, सुश्री मीरा महादेवन, नारायणी कुशवाह, पुष्पा, श्रीमती पुष्पा भारती, श्रीमती बिन्दु अग्रवाल, लीरा, दिनेश नन्दिनी, कमला टंडन कमल, महेन्द्रबाला, प्रिया राजन, डालमिया, अनीता चट्टोपाध्याय, निरुपमा देवी, शांति जोशी, चन्द्रकिरण सौनरेक्सा, स्वर्ण कुमारी देवी, मालती रानी सिन्हा, कमलेश सक्सेना, शोभा रानी, कृष्णा कुमारी, शशिप्रभा शास्त्री, श्रीमती ताराबाई, शांतिलता अग्रवाल, साधना प्रतापी, श्रीमती कुंती देवी, प्रभावती देवी, शारदा देवी आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

1.4 समकालीन महिला उपन्यासकारों की सृजन की अस्मिताएँ

समकालीन युग में जीवन मूल्यों, परिस्थितियों एवं परिवेश में विशेष बदलाव आया है। हिन्दी उपन्यास साहित्य इन परिवर्तनों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। समकालीन उपन्यास साहित्य का यह युग न केवल व्यक्ति की अस्मिता से जुड़े महत्वपूर्ण प्रश्नों से साक्षात्कार करता है अपितु आधुनिक जीवन की विडम्बनाओं तथा कठिनाइयों से भी जूझता दिखाई देता है। यही वह युग है जब नारी की अपनी सोच और उसके प्रति समाज के दृष्टिकोण में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन दिखाने लगी है। इन सबका सीधा प्रभाव स्त्री के मानसिक व अनुभव जगत पर भी पड़ता है जिसकी अभिव्यक्ति समकालीन उपन्यास साहित्य में नारी लेखन में भी स्पष्ट दृष्टव्य है।

समकालीन हिन्दी महिला उपन्यासकारों में प्रमुख है- कृष्णा सोबती, मेहरुन्निसा परवेज़, मृदुला गर्ग, उषा प्रियंवदा, मन्नू भंडारी, मंजुल भगत, चित्रा मुद्गल, राजी सेठ, मैत्रेयी पुष्पा, शशिप्रभा शास्त्री, नासिरा शर्म, चन्द्रकान्ता आदि सभी तमाम लेखिकाओं ने अपनी लेखनी के माध्यम से उस युग की चेतना को अपने उपन्यासों में प्रतिबिम्बित रूप दिया है। उन्होंने न केवल अपनी व्यक्तिगत विचारधाराओं को बल्कि सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक विचार धाराओं को भी अपनी लेखनी का माध्यम बनाया है, जिसमें सभी लेखिकाएँ सफल रहे हैं, तो यहाँ प्रमुख महिला लेखिकाओं और उनके कार्यों पर विचार करना आवश्यक है।

1.4.1 कृष्णा सोबती

कृष्णा सोबती हिन्दी साहित्य की महिला उपन्यासकारों में सबसे अधिक चर्चित और विवादास्पद व्यक्तित्व सम्पन्न लेखिका है। एक स्त्री होने के नाते उनकी रचनाओं में स्त्री समूह की व्यथा-कथा का मार्मिक चित्रण होना स्वाभाविक है। उन्होंने स्त्रियों को पुरुषों के साथ समाज में स्थान दिलाने के साथ-साथ उनकी कई तरह की समस्याओं और जटिलताओं को भी अपनी रचनाओं में खुलकर दर्शाया है। उनके साहित्य में हमें 'सेक्स' का खुला चित्रण देखने को मिलता है, इसीलिए उन्हें 'बोल्डनेस' लेखिका के नाम से जाना जाता है। उन्होंने स्त्रियों के जीवन में यौन प्रश्न उठाकर आधुनिक भारतीय पितृसत्तात्मक परिवार और सामाजिक संरचना पर करारा प्रहार किया। वे स्वयं और उनका अनुभव जगत ही सम्पूर्ण साहित्य में प्रतीत होता है। उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं- 'चन्ना' (१९५४), 'दार से बिछूडी' (१९६०), 'यारों के यार तिन पहाड़' (१९६८), 'मित्रो मरजानी' (१९७४), 'सूरजमुखी अंधेरे के' (१९७४), 'ज़िन्दगीनामा' (१९७९), 'ए लड़की' (१९९१), 'सारों के सार', 'तिन पहाड़', 'दिलोदानिश' (१९९३), 'समय सरगम' (२०००), 'कुछ और भी', तथा 'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिन्दुस्तान' (२०१७) आदि।

1.4.2 मेहरुन्निसा परवेज़

मेहरुन्निसा परवेज़ एक संवेदनशील एवं प्रगतिशील विचारधारा की लेखिका हैं, जिनका नाम समकालीन हिन्दी कथा साहित्य में बड़े सम्मान से लिया जाता है। एक मध्यवर्गीय मुस्लिम लेखिका के रूप में आपका हिन्दी साहित्य में उच्च स्थान है। उनके उपन्यासों में सामाजिक धरातल पर आधारित मुस्लिम समाज का चित्रण किया है। उन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से मध्यवर्गीय नारी जीवन, नारी शोषण, पीड़ा आदि को पाठकों के सामने रखा है तथा रूढ़िवादी सामाजिक व्यवस्था से मुक्ति पाना ही इनके लेखन का लक्ष्य हैं। आपके प्रमुख उपन्यास हैं- 'आखों की दहलीज़' (१९६९), 'उसका घर' (१९७२), 'कोरजा' (१९७७), 'अकेला पलाश' (१९८१) और 'पत्थरवाली गली'। 'आँखों की दहलीज़' में उन्होंने समाज में नारियों को

होनेवाली समस्याओं का चित्रण किया है तो 'उसका घर' उपन्यास एक मध्यवर्गीय ईसाई परिवार की आन्तरिक टूटन पर आधारित एक उपन्यास है। एक लेखिका के रूप में वे परिवार में होने वाली विभिन्न समस्याओं को सही ढंग से अभिव्यक्त करने में सफल रहीं। उनका अन्तिम उपन्यास 'अकेला पलाश' दाम्पत्य जीवन में आए ठेड़ेपन एवं अकेलेपन की समस्या को लेकर लिखा गया उपन्यास है। इस प्रकार लेखिका ने अपने उपन्यासों में मुस्लिम समाज में व्याप्त अनाचार, परिवार की मूल्य विघटन, आर्थिक विपन्नता आदि का सजीव चित्रण किया है।

1.4.3 मृदुला गर्ग

समकालीन महिला उपन्यासकारो में बहुचर्चित और विवादास्पद लेखिका मृदुला गर्ग एक 'बोल्ड लेखिका' के रूप में जाना जाता है। उनके लेखन का केन्द्र बिन्दु यौन-सम्बन्धों से जुड़ा रहा है, उन्होंने अपनी रचनाओं में 'सेक्स' यानी 'यौन सम्बन्धों' का खुलकर वर्णन किया है जिसके कारण उन्हें 'बोल्ड' लेखिका कहा जाता है। उनकी नायिकाएँ यौन मुक्ति तथा स्वेच्छाचार की पक्षधर रही है। उनका प्रसिद्ध उपन्यास हैं- 'उसके हिस्से की धूप' (१९७५), 'वंशज' (१९७६), 'चित्तकोबरा' (१९७९), 'अनित्य' (१९८०), 'मैं और मैं' (१९८४), और 'कठगुलाब' (१९९६)।

पहला उपन्यास 'उसके हिस्से की धूप', में दाम्पत्येतर सम्बन्धों का खुला वर्णन मिलता है तो 'वंशज' उपन्यास में लेखिका लीक से हटकर नयी ज़मीन तोड़ने का प्रयास करती है। लेखिका का मुख्य उद्देश्य उनके द्वारा प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से सांस्कृतिक संपत्ति में महिलाओं के अधिकारों के प्रति पुरुषों के दृष्टिकोण में बदलाव लाना रहा है। वह चाहती हैं कि महिलाओं को अपने पिता की सम्पत्ति में पुरुषों के बराबर अधिकार मिले। 'वंशज' उपन्यास के माध्यम से यह प्रश्न उठता है कि जन्मदाता पिता स्वयं अपनी पुत्री के साथ न्याय नहीं कर पाता है।

1.4.4 उषा प्रियंवदा

उषा प्रियंवदा प्रगतिशील कथा साहित्य की एक वरिष्ठ लेखिका के रूप में विख्यात है। उन्हें नारी विमर्श और नारी चेतना के उन्नयन और उत्थान की प्रमुख रचनाकार माना जा सकता है। उन्होंने अपने उपन्यासों में स्त्री को केन्द्र में रखकर भारतीय जीवन की नारी समस्या तथा पारम्परिक एवं पाश्चात्य जीवन शैली के द्वंद्व को स्पष्ट रूप से समझाया है। उनके उपन्यासों का महिला पात्र असहाय और असुरक्षित न होकर स्वावलम्बन, आत्मगौरव, सम्मान और स्वतंत्रता के बल पर खिलकर जीवन के नये यथार्थ के प्रति नये विश्वास से प्रतिष्ठित हुई हैं। उनकी रचनाओं में एक ओर आधुनिकता का प्रबल स्वर मिलता है तो दूसरी ओर उनमें चित्रित प्रसंगों तथा संवेदनाओं के साथ हरेक वर्ग का पाठक तादात्म्य का अनुभव करता है। उपन्यास के क्षेत्र में उन्होंने श्रीगणेश 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' (१९६२) से किया था। उनके अन्य महत्वपूर्ण उपन्यास हैं- 'रुकोगी नहीं राधिका' (१९६७), 'शेषयात्रा' (१९८४), 'अंतर्रवंशी' (२०००), 'भया कबीर उदासा' (२००७), 'नदी' (२०१३) आदि।

1.4.5 मन्नू भंडारी

मन्नू भंडारी हिन्दी साहित्य जगत की एक विख्यात लेखिका, कहानीकार व उपन्यासकार मानी जाती है। उनकी रचनाओं में भारतीय नारी के जीवन और उसकी विशेषताओं का प्रभावशाली वर्णन, स्त्री मन से जुड़ी अनुभूतियों का चित्रण तथा स्त्री स्वतंत्र व्यक्तित्व का मूल्यांकन भी प्रस्तुत किया गया है। उन्होंने मध्यम वर्ग के जीवन में लोगों के आन्तरिक संघर्षों और मानसिक तनावों से उत्पन्न होने वाली समस्याओं पर प्रकाश डाला है और अहंकार, स्वार्थ, दंभ आदि को उजागर किया है। उनके उपन्यासों में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को पारिवारिक और सामाजिक दायरे से बाहर राजनीतिक और मानवीय आधार पर ले जाने का प्रयास दिखता है और महिलाओं की आन्तरिक एवं हार्दिक भावनाओं को प्रस्तुत दर्शाया गया है। उपन्यासकार के रूप में उनकी देन है- 'एक इन्च मुस्कान' (१९६१), 'आपका बँटी' (१९७१), 'कलवा' (१९७१), 'महाभोज' (१९७९) और 'स्वामी' (१९८२)। 'एक इन्च मुस्कान' उन्होंने पति राजेन्द्र यादव के साथ लिखा हुआ है।

1.4.6 मंजुल भगत

समकालीन हिन्दी उपन्यासकारों में मंजुल भगत का महत्वपूर्ण स्थान है। उनके उपन्यासों में विषय वैविध्य दर्शनीय है और स्त्री पात्र प्रत्येक वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व करते हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों में मध्यवर्गीय महिलाओं के जीवन की समस्याओं, निम्न वर्ग से लेकर उच्च वर्ग तक की महिलाओं के दुखों और संवेदनाओं को पाठकों के सामने बहुत प्रभावी ढंग से व्यक्त करने का प्रयास किया है। स्वयं लेखिका ने अपने पात्रों के बारे में लिखा है- "मेरे पात्र न कायर है, न विद्रोही। उनमें स्थितियों से टकराकर टिके रहने की क्षमता है।" उपन्यास क्षेत्र में उनका पदार्पण सन १९७६ में 'टूटा हुआ इंद्रधनुष' (१९७६) से हुआ। उनका अन्य उपन्यास है- 'लेडीज क्लब' (१९७६), 'अनारो' (१९७७), 'बेगान घर में' (१९७८), 'खातुल' (१९८३), 'तिरछी बौछार' (१९८४), 'गंजी' (१९९५) आदि।

1.4.7 चित्रा मुद्गल

समकालीन हिन्दी उपन्यासों में चित्रा मुद्गल का स्थान अद्वितीय है। एक प्रगतिशील सशक्त लेखिका के रूप में उन्होंने अपने जीवन के अनुभवों को उपन्यासों में व्यक्त किया है। उनके साहित्य में पूंजीवादी व्यवस्था और उपभोक्तावादी सभ्यता के सन्दर्भ में स्त्री के विविध रूपों, विद्रूपताओं, विवशताओं, आधुनिक जीवन की यांत्रिकताओं, बौद्धिकता एवं प्रतियोगिता आदि के प्रभाव से उत्पन्न विडम्बनाओं, मूल्यहीनताओं का यथार्थपरक अंकन दर्शनीय हैं। उपन्यास के क्षेत्र में उनका पदार्पण सन १९९० में 'एक ज़मीन अपनी' से हुआ। उनके अन्य उपन्यास है- 'आवाँ' (२०००), 'गिलिगडु' (२००२), 'एक काली एक सफेद' (२००६) आदि।

1.4.8 राजी सेठ

हिन्दी की उभरती समकालीन लेखिकाओं में नारी मनोविज्ञान को गहरी सूक्ष्मता से उजागर करने वाली लेखिका के रूप में राजी सेठ का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने बहुत ही कम समय में हिन्दी साहित्य में अपना एक अनोखा स्थान बनाया है। अपने उपन्यासों में वे न तो स्त्री को नकारते हैं और न ही उसे नष्ट करते हैं, बल्कि उसे उसके

स्वाभाविक एवं नैसर्गिक रूप में आने देते हैं और साथ ही स्त्री की कमियों को पहचानने का प्रयास करते हैं। आपके दो प्रमुख उपन्यास प्रकाशित हैं- 'तत्सम' (१९८३) और 'निष्कवचन' (१९९५) दोनों उपन्यासों का कथ्य जितना असाधारण है, उतनी ही विशिष्ट उसकी अभिव्यक्ति भी है।

1.4.9 मैत्रेयी पुष्पा

समकालीन साहित्यकार मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में नारी जीवन की आन्तरिक और बाह्य परिस्थितियाँ झलकती है। उनकी रचनाएँ स्त्री विमर्श को नई पहचान और आयाम देने में सफल भूमिका निभा रही हैं। सभी उपन्यास नारी प्रधान हैं और महिलाओं की सशक्त भूमिका को उजागर करते हैं, यानी उनके उपन्यासों में पुरुष पात्रों की तुलना में महिला पात्रों को विशेष स्थान मिलता है। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से ग्रामीण जीवन और परिवेश को सहजता से अभिव्यक्त किया है। उपन्यास के क्षेत्र में उनका प्रवेश सन १९९० में 'स्मृति दंश' (१९९०) द्वारा हुआ। अन्य प्रसिद्ध रचनाएँ है- 'बेतवा बहती रही'(१९९३), 'इदन्नमम' (१९९४), 'चाक' (१९९७), 'झूला नट' (१९९९), 'आल्मा कबूतरी' (२०००), 'अगनपाखी' (२००१), 'कस्तूरी कुंडल बसे' (आत्मकथात्मक उपन्यास २००२), 'विजन', 'कही ईसुरी फाग' (२००४), 'त्रिया हठ' आदि।

1.4.10 शशिप्रभा शास्त्री

हिन्दी साहित्य के ख्यातिप्राप्त उपन्यासकार के रूप में शशिप्रभा शास्त्री का स्थान महत्वपूर्ण है। उनके उपन्यासों में जीवन में अलग-अलग भूमिकाएँ निभाने वाली महिलाओं की सफलताओं, दुर्बलताओं, आकांक्षाओं, इच्छाओं, प्रेम-नफरतों आदि को सशक्त अभिव्यक्ति दी है। वे सन १९७२ में 'वीरान रास्ते और झरना' द्वारा उपन्यास के क्षेत्र में प्रवेश किया। अन्य उपन्यास हैं- 'नावें', (१९७४), 'सीढ़ियाँ' (१९७६), 'परझाईयों के पेछे' (१९७९), 'क्योंकि' (१९८०), 'अमलतास' (१९८०), 'कर्करेखा' (१९८३), 'परसों के बाद' (१९८५), 'ये छोटे महायुद्ध' (१९८८), 'उम्र एक गालियार की' (१९८९), 'मीनारें' (१९९२), 'हरदिन इतिहास' (१९९५), 'खामोश होते सवाल' आदि।

1.4.11 नासिरा शर्मा

नासिरा शर्मा स्त्री विमर्श की प्रमुख हस्ताक्षर एवं प्रगतिशील विचारों की लेखिका है जो मनुष्यता को धर्म, सम्प्रदाय से ऊपर मानती है। अपने उपन्यासों के ज़रिए उन्होंने मुस्लिम समाज में रूढ़ियों से जकड़ी हुई नारी की विवशता का वर्णन किया है। वे अपनी पहचान एक नारीवादी लेखिका के रूप में नहीं रखती बल्कि वह नारी चेतना के उत्थान की एक सक्षम हस्ताक्षरिका हैं। उनके मुताबिक महिलाओं को अपनी लड़ाई खुद लड़नी पड़ती है क्योंकि इस समाज में कोई भी उनके पक्ष में नहीं है। उनकी महिला पात्र शरीर और मन से स्वतंत्रता की माँग करती हैं तथा साँस्कृतिक और धार्मिक प्रभुत्व के दोहरे मानकों को चुनौती देती हैं और उनके पात्रों में नई ताकत, चाहत और साहस का संचार करने की क्षमता भी रखती हैं। उपन्यास के क्षेत्र में उनकी शुरुआत सन १९८४ में 'सात नदियाँ एक समन्दर' से हुई। उनके अन्य उपन्यास हैं- 'शालमली' (१९८७), 'ठीकरे की मँगनी' (१९८९), 'ज़िन्दा मुहावरे' (१९९३), 'अक्षयवट' (२००३), 'कुइयाँजान' (२००५), 'जीरोरोड' (२००८), 'पारिजात' आदि।

1.4.12 चन्द्रकान्ता

समकालीन महिला उपन्यासकारों में स्त्रीवादी और संघर्ष को प्रभावी ढंग से चित्रित करने वाली उपन्यासकारों में श्रीमती चन्द्रकान्ता का स्थान अद्वितीय है और एक गैर-हिन्दी भाषी लेखिका के रूप में उनका हिन्दी भाषा साहित्य में योगदान अमूल्य है। उन्होंने हिन्दी में स्नातकोत्तर हासिल प्राप्त की, बाद में दो साल तक अध्यापन कार्य किया और फिर नौकरी छोड़कर पूरी तरह से साहित्य सृजन में लीन हो गईं। वे कविता, कहानी, उपन्यास, आत्मकथात्मक संस्मरण, आलेख आदि विधाओं में अपनी तूलिका चलाई और जिसमें वे पूर्णतः सफल रहे। अब तक उन्होंने सात उपन्यास और लगभग दो सौ कहानियाँ रचकर हिन्दी साहित्य की दिशा को समृद्ध करने का प्रयास किया है। उन्होंने अपने कथा साहित्य में अपनी जन्मभूमि कश्मीर तथा पंजाब में व्याप्त आतंकवाद तथा आतंकवाद से पीड़ित जनता

की दयनीय स्थिति का यथार्थ वर्णन प्रस्तुत किया है। समकालीन उपन्यासकारों में वे समाज की समस्याओं को साहित्यिक विधा के रूप में अभिव्यक्त करने में पूर्णतः सफल रहीं और सन १९६७ से प्रारम्भ हुई लेखन यात्रा को वे सफलतापूर्वक आगे बढ़ा रही हैं।

"कश्मीर की भूमि छूटने की पीड़ा की टीस उनकी कहानियों एवं उपन्यासों में महसूस की जा सकती है, तो कश्मीर की वादियों, नदियों, ढलानों, पहाड़ों और मैदानों की सुन्दरता भी उनकी अनेक रचनाओं में रची-बसी हुई है। फूलों की सुगंध का मोह है, तो फलों की रसालता, जो यातना भरे जीवन को सींचती है, की पहचान भी चन्द्रकान्ता की रचनाओं में अंकित है।"[18]

1.5 चन्द्रकान्ता के साहित्यिक अवदान: एक नज़रियाँ

किसी भी साहित्यकार के साहित्यिक विश्लेषण एवं मूल्यांकन करने से पहले प्रस्तुत लेखक के जीवन एवं व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं से भली-भाँति परिचित होना आवश्यक है। समकालीन महिला लेखिकाओं में सामाजिक जागरूकता, साहित्यिक विषयों की विविधता, विषयगत नवीनता, विभिन्न प्रकार की समस्याओं का ज्ञान आदि की आवश्यकता है। श्रीमती चन्द्रकान्ता की साहित्यिक रचनाएँ उस समय के मानव जीवन से सम्बन्धित विभिन्न विषयों पर आधारित हैं। वह अपनी तूलिका से सामाजिक गतिविधियों को प्रासंगिक बनाने में सफल रही हैं। उन्होंने मानवीय स्तर पर उन समस्याओं का समाधान करने का प्रयास किया है जो समाज के स्वस्थ एवं सुखी जीवन को कष्टमय बनाती हैं। आज महिलाओं को कथा लेखन में कई तरह की चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, वे अपने कथा साहित्य में बुनियादी सच्चाइयों को उजागर करने का प्रयास करती हैं। वे समाज के विभिन्न पहलुओं जैसे भ्रष्टाचार, पारिवारिक रिश्ते, महिलाओं की समस्याएँ, बदलते स्त्री-पुरुष सम्बन्ध, पश्चिमी प्रभाव आदि से करीब से वाकिफ हैं। यहाँ सुप्रसिद्ध हिन्दी साहित्यकार श्रीमती चन्द्रकान्ता के साहित्य सृजन का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने के साथ-साथ उनकी जीवनी, व्यक्तिगत विशेषताओं, पुरस्कारों एवं सम्मानों का संक्षिप्त अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

1.5.1 जीवनवृत्त

विभिन्न प्रकार की जीवन धाराएँ, सामाजिक एवं समसामयिक परिवेश का व्यक्ति के व्यक्तित्व पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। हर किसी का व्यक्तित्व और विचारधारा सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, साँस्कृतिक आदि विभिन्न विधाओं के अनुसार विस्तारित होती है, साहित्य इसका गवाह है। साहित्यिक कृतियों की नींव लेखक के निजी जीवन और अनुभवों के आधार पर रूपायित होती है। श्रीमती चन्द्रकान्ता के लेखन का मूल आधार जीवनानुभवों से जुड़ा है।

चन्द्रकान्ता अपने जीवन में भोगे हुए कड़वे अनुभवों को सत्य की भाषा में व्यक्त करने में सबसे आगे हैं। लेखिका ने स्वयं इस तथ्य को स्वीकार करते हुए लिखा है- "मेरेलिए लेखन जहाँ भोगे हुए यथार्थ की अभिव्यक्ति है, वहीं अनुभव किए सत्य की भी। मैं ने जिन सन्दर्भ एवं स्थितियों को सिद्धान्त से महसूस किया, व्यवस्था के जिन देशों ने मुझे दोषित किया, मैं ने उन्हें अपनी रचनाओं में डाला।" [19] आपकी ज़िन्दगी में भोगे हुए यथार्थ का भावनात्मक एवं कलात्मक रूप में सम्पूर्ण विवरण नीचे प्रस्तुत है।

1.5.2 जन्म तथा परिवार

श्रीमती चन्द्रकान्ता का जन्म ३ सितम्बर १९३८ को श्रीनगर, कश्मीर में एक सनातन धर्मी कश्मीरी पंडित संयुक्त परिवार में हुआ था, जो वितस्ता के तट पर रहता था। उनके परिवार ने छोटी उम्र से ही शिक्षा और अनुशासन को बहुत महत्व दिया और बाद में वही गुण स्वाभाविक रूप से लेखिका में आ गए।

कश्मीर का मतलब धरती पर स्वर्ग है, उन्हें वहाँ जन्म लेने का सौभाग्य मिला है, इसलिए वे हमेशा खुद को भाग्यशाली मानती हैं और कहती हैं, "कश्मीर जैसी सुन्दर प्रकृतिप्रिय वादी में जन्म लेना हर किसी के भाग्य में नहीं होता। मैं उन भाग्यशालियों में एक हूँ, जिन्होनें वहाँ जन्म ही नहीं लिया, वहाँ के पर्वतों, पानियों, चीड़, देवतार और झीलों पर चुके वेद वृक्षों की कतारों को अपनी रंगों, रेशों उतरते महसूस किया है।" [20] अपनी जन्मभूमि कश्मीर के प्रति उनके हृदय में सदैव गहरा प्रेम और सम्मान रहा।

1.5.3 बचपन

जिस परिवार में चन्द्रकान्ता का जन्म हुआ वह अपने बच्चों और समाज की उन्नति के लिए शिक्षा को महत्व देता था। इसके साथ-साथ धार्मिक अनुष्ठानों, संस्कारों और अनुशासनों का भी बहुत सख्ती से पालन किया जाता था, लेकिन छोटी चन्द्रकान्ता घर के सभी अनुशासनों का पालन न करके लीक तोड़कर चलनेवाली थी। जब उनके भाई-बहन घर के सभी आदर्शों, निष्ठाओं और विभिन्न प्रकार की विधियों का पालन करते हुए घर में खिलौनों से खेल रहे होते थे तो चन्द्रकान्ता जी वहाँ नहीं बैठती थीं। वे घर के बाहर किसी बादाम नशापति या अखरोट के पेड़ पर चढ़ जाती थी और फल तोड़ लेती थी। बाद में, वे इन सभी मीठे फलों को अपनी फ्राक्क के घेरे में इकट्ठा करतीं, कटी हुई चीड़ की शाखाएँ इकट्ठा करतीं और हाँफतीं और पसीने से लथपथ घर लौट आतीं।

चन्द्रकान्ता जी ने अपने संस्मरणात्मक लेखनों में कई बार अपनी बालिका रूप का यानी बचपन के जीवन सम्बन्धी रेखाचित्र प्रस्तुत किया है, वे लिखती भी है- "अपने बारें में सोचते हुए जब भी मुड़कर देखती हूँ तो मुझे एक छह-सात वर्ष की खिलंदड़ी बच्ची आड़ी-मोड़ी घसीली पगडंडियों पर हवा से होड लेते भागती नज़र आती है। कन्धे तक लटकते वेतरतीय उलझे बाल, मूंह माथे पर छितराये, वह कच्ची दूबिया पगडंडियों पर ऊंचे चीड़, देवतारों से बतियाति बहताशा दौड़ी जा रही है, अकेली-अकेली।" [21]

आपका बचपन कश्मीर में विदस्ता नदी के तट पर, एक सुन्दर मनमोहक प्राकृतिक वातावरण में बीता और वे हमेशा अकेले रहना पसन्द करती थीं, अपने जन्मस्थान की प्राकृतिक सुन्दरता में लीन रहती थीं। वे बचपन से ही बहुत धैर्यवान लड़की थी, इसका एक छोटा सा उदाहरण यह है कि बचपन में जब उनकी बड़ी बहन और छोटी बहन मुज़फ्फ़राबाद में कृष्णगंगा के तट पर स्नान घर में अचानक डूब गईं, तो चन्द्रकान्ता ने ही अपनी लम्बी पतली पठान हाथों से उन दोनों को बचाया। बालिका चन्द्रकान्ता हर किसी से छोटी-छोटी बातों पर सवाल पूछती थी। बचपन में उनमें विरोध करने की प्रवृत्ति थी और वह अत्यधिक

जिज्ञासु भी थीं। उनके अनुसार "एक खिलंदड़ा बचपन और असीम जिज्ञासों भरा मन जिसमें घर के नैतिक अनुशासन अटते ही नहीं थे।" [22] इस तरह के व्यवहार के कारण उनकी माँ उन्हें प्यार से 'कलंदर' यानी 'मस्त लड़की' कहकर बुलाती थीं जो उन्हें बहुत पसन्द था।

मृत्यु शय्या पर भी माँ अपनी कलंदर बेटी के लिए बहुत चिन्तित और व्यथित थी। माँ की मृत्यु उनके जीवन का पहला आघात एवं सदमा थी। उन्हें बचपन से ही कहानियाँ सुनना बहुत पसन्द था और वह अपनी नानी से भी खूब कहानियाँ सुना करती थीं। नानी की मृत्यु होने के बाद वह घर पर बिल्कुल अकेली महसूस करती थीं, इसलिए उन्होंने खुद को अपने पिता की 'लाइब्रेरी' की ओर आकर्षित किया और 'लाइब्रेरी' में रखी कई किताबें पढ़ीं। इस प्रकार की जीवन शैली से ही उन्हें अंग्रेज़ी और हिन्दी साहित्य के प्रति रुचि बढ़ाने का अवसर मिला।

1.6 कृतित्व

हिन्दी साहित्य के शब्दकोष को सम्पन्न करने में श्रीमती चन्द्रकान्ता का रचनात्मक योगदान अविस्मरणीय है। सन १९६७ में नियमित लेखन में प्रवेश करने वाले चन्द्रकान्ता पिछले अड़तालीस वर्षों से लगातार हिन्दी कथा साहित्य की सेवा में तल्लीन हैं। उन्हें हिन्दी साहित्य में आतंकवाद और अव्यवस्थित प्रशासनिक व्यवस्था से जूझ रहे कश्मीर के दर्द, पर्यावरण और संस्कृति को अपनी लेखनी के माध्यम से दर्ज करने वाली पहली महिला के रूप में जाना जाता है।

अब तक उन्होनें १४ कहानी संग्रह, ७ कथा संकलन, ७ उपन्यास, 'यहीं कहीं आसपास' शीर्षक कविता संग्रह, 'मेरे भोजपत्र' शीर्षक संस्मरण एवं आलेख संग्रह, 'हाशिए की इबारतें' नामक आत्मकथात्मक संस्मरण और 'प्रश्नों के दायरे में' शीर्षक साक्षात्कारों का संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं। इसके अलावा उनकी कहानियाँ कई साहित्यिक पत्रिकाओं और 'अभिव्यक्ति' नामक साहित्यिक वेबसाइट पर भी प्रकाशित हुई हैं।

1.6.1 साहित्य सृजन का आरम्भ

इन्होंने बारह वर्ष की कच्ची उम्र में कविता लिखकर साहित्य सृजन की शुरुआत की। लिखने की प्रेरणा उनमें अनायास ही पैदा हो गई थी और इसका कारण उनकी माँ के असामयिक निधन से उत्पन्न मानसिक पीड़ा और अकेलेपन का तनाव था। उनके लेखन की शुरुआत में उनकी रचनाएँ स्कूल और कॉलेज की पत्रिकाओं में प्रकाशित होती थीं। इसके अलावा कॉलेज पत्रिकाओं में 'रोगिनी' और 'खोटी चवन्नी' शीर्षक से कहानियाँ भी प्रकाशित हुईं।

1.6.2 नियमित लेखन का आरम्भ

राजस्थान के पिलानी में दो साल तक पढ़ाने के बाद चन्द्रकान्ता ने अपने पति डॉ. एम.एल. विशिन के साथ हैदराबाद गईं और वहीं से अपना नियमित लेखन शुरू किया। कविता लिखकर साहित्यिक जीवन की शुरुआत करने वाली लेखिका ने कहानियों के माध्यम से नियमित लेखन की शुरुआत की। इसका कारण वे यों स्पष्ट करती है- "ज्यों-ज्यों अनुभवों का विस्तार हुआ, लगा कि हमारे समाज और व्यवस्था में जो विसंगतियाँ हैं, समस्या हैं, उन्हीं कविता से बेहतर कहानी में कहा जा सकता है। आगे चलकर मेरे अनुभव वृत्त में कुछ बृहत्तर प्रश्न और समस्याएँ आयी, जिन्हें विभिन्न कोणों से परीक्षित, पुनर्विश्लेषित करने की ज़रूरत थी। इसकेलिए बड़े कैनवास की ज़रूरत थी, इसलिए उपन्यास की ओर प्रवृत्त हुई।" [23]

सितम्बर १९६७ में हैदराबाद से प्रकाशित 'कल्पना' पत्रिका में उनकी पहली कहानी 'खून के रेशे' प्रकाशित हुईं। उसके बाद अक्तूबर १९६७ में इलाहाबाद से प्रकाशित 'नयी कहानियाँ' (संपादक: अमरूदराय) पत्रिका में दूसरी कहानी 'कैक्टस' और अगले वर्ष १९६८ में कलकत्ता से पकाशित ज्ञानोदय पत्रिका में 'सलाखों के पीछे' कहानी छपीं। तदनंतर 'धर्मयुग', 'सारिका', 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', 'कादंबनी' आदि प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में उनकी कहानियाँ छपने लगीं। सन १९७५ में पहली पुस्तक 'सलाखों के पीछे', कहानी संग्रह, हैदराबाद के स्वाती

प्रकाशन द्वारा प्रकाशित हुई। उसके बाद सन १९८१ में दिल्ली के पभात प्रकाशन द्वारा ‘अर्थान्तर’ और ‘अंतिम साक्ष्य’ उपन्यासों का प्रकाशन हुआ।

1.6.3 चन्द्रकान्ता के कहानी साहित्य

अब तक उन्होनें दो सौ कहानियाँ लिखकर हिन्दी कहानी साहित्य की श्रीवृद्धि के लिए अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। अब तक उनके १४ कहानी संग्रह और ७ कथा संकलन प्रकाशित हो चुके हैं। जिनमें प्रमुख हैं: ‘सलाखों के पीछे’ (१९७५), ‘गलत लोगों के बीच’ (१९८४), ‘पोशनूल की वापसी’ (१९८८), ‘दहलीज़ पर न्याय’ (१९८९), ‘ओ सोनकिसरी’ (१९९१), ‘कोठे पर कागा’ (१९९३), ‘सूरज उगने तक’ (१९९४), ‘काली बर्फ’ (१९९६), ‘कथानगर’ (२००१), ‘बदलते हालात में’ (२००२), ‘अब्बु ने कहा था’ (२००५), ‘तैतीबाई’ (२००७), ‘रात में सागर’ (२००९), ‘अलकटराज देखा?’ (२०१३)।

1.6.4 चन्द्रकान्ता का कथा संकलन

अब तक उनकी सात कथा संकलन प्रकाशित हुए हैं जिनका सम्पादन कार्य स्वयं लेखिका ने ही किया है। इन सात कथा संकलनों में २००४ में प्रकाशित आँचलिक कहानियाँ, २००७ में प्रकाशित पंजाबी भाषा में श्रीहर्ष कुमार हर्ष द्वारा अनूदित कथा संग्रह (वितस्ता दा जहर) आदि हैं। उनमें प्रमुख हैं ‘चर्चित कहानियाँ’ (१९९६), ‘प्रतिनिधि प्रेम कहानियाँ’ (१९९६), ‘यादगारी कहानियाँ’ (२००९), ‘दस प्रतिनिधि कहानियाँ’ (२०१३) आदि।

1.6.5 चन्द्रकान्ता का उपन्यास साहित्य

आपके कुल सात उपन्यासों का पकाशन हो चुके हैं जैसे: ‘आर्थान्तर’ (१९८१), ‘अंतिम साक्ष्य’ (१९८१), ‘बाकी सब खैरियत है’ (१९८३), ‘ऐलान गली ज़िन्दा है’ (१९८४), ‘यहाँ बितस्ता बहती है’ (१९९२) , ‘अपने-अपने कोणार्क’ (१९९५), ‘कथा सतीतर’ (२००१)।

1.6.6 चन्द्रकान्ता का कथेतर साहित्य

चन्द्रकान्ता उपन्यासों, कहानी संग्रहों एवं कथा संकलनों के अलावा ‘यही कही आसपास’ (१९९९) शीर्षक कविता संग्रह, ‘मेरे भोज पत्र’ (२००८) शीर्षक संस्मरण एवं आलेख

संग्रह, ‘हाशिए की इबारतें’ (२००९) नामक आत्मकथात्मक संस्मरण, ‘प्रश्नों के दायरे में’ (२०१५) शीर्षक साक्षात्कार संग्रह प्रकाशित हुए हैं।

1.6.7 पुरस्कार एवं सम्मान

उनकी साहित्य साधना की सार्थकता का प्रमाण उन्हें अब तक मिले अनगिनत पुरस्कार और सम्मान हैं। उन्हें अब तक प्राप्त पुरस्कार एवं पुरस्कृत कार्यों का विवरण इस प्रकार है:-

१. जम्मु-कश्मीर कल्चरल अकादेमी का बेस्ट बुक्स एवार्ड

जम्मू-कश्मीर साँस्कृतिक अकादमी का सर्वश्रेष्ठ पुस्तक पुरस्कार (बेस्ट बुक्स एवार्ड) सन १९८२ में उपन्यास ‘अर्थान्तर’ को, सन १९८६ में उपन्यास ‘एलानी गली ज़िन्दा है’ को, सन १९९४ में कहानी संग्रह ‘ओ सोनकिसारी’ को और उपन्यास सन २००६ में ‘कथा सतीसर’ के लिए मिला प्राप्त हुआ।

२. हरियाणा साहित्य अकादेमी की ओर से प्राप्त पुरस्कार

सन १९९७ में ‘अपने-अपने कोणार्क’ उपन्यास को, सन २००६ में ‘अब्बु ने कहा था’ कहानी संग्रह को, और सन २०१० में ‘हाशिए की इबारतें’ शीर्षक आत्मकथात्मक संस्मरण को हरियाणा साहित्य अकादेमी की ओर से पुरस्कार मिला।

३. मानव संसाधन मंत्रालय, भारत सरकार

सन १९८३ में ‘बाकी सब खैरियत है’ उपन्यास को, सन १९८९ में कहानी संग्रह ‘पोशनूल की वापसी’ को और २००३-०४ में ‘बदलते हालात में’ कहानी संग्रह को मानव संसाधन मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा पुरस्कृत हुए।

४. हिन्दी अकादमी, दिल्ली

सन २००२ में ‘कथा सतीसर’ उपन्यास को दिल्ली के हिन्दी अकादमी से पुरस्कार मिला। तदनंदर सन २००८ में उनको हिन्दी अकादमी की ओर से साहित्यकार सम्मान भी प्राप्त हुआ।

५. व्यास सम्मान (के.के फ़ाउंडेशन, दिल्ली)

सन २००५ में 'कथा सतीसर' उपन्यास केलिए व्यास सम्मान प्राप्त हुआ है।

1.6.8 अन्य सम्मान

उपरोक्त पुरस्कारों के अलावा उन्हें कई अन्य पुरस्कार और सम्मान प्राप्त हुए हैं। वे इस प्रकार हैं -

१ उपन्यास विधा के लिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल संस्थान, वाराणासी की ओर से चंद्रवती शुक्ल सम्मान- २००५.

२. गद्य विधा के लिए कल्पतरू सम्मान- २००५.

३. समग्र लेखन केलिए वागमणि सम्मान- २००७.

४. राष्ट्रभाषा गौरव सम्मान- २००६.

५. हिन्दी संस्थान, उत्तर प्रदेश द्वारा सौहार्द सम्मान २००७- ०८.

६. मुंबई के कमाल गोयनका फ़ाउंडेशन का रत्नी देवी वाग्देवी पुरस्कार- २०१० आदि।

निष्कर्ष

समकालीन हिन्दी लेखिकाओं ने अपने उपन्यासों में नारी शोषण, तनाव, उत्पीड़न, कुंठा, पीड़ा, व्यथा और इन सबके परिणामस्वरूप उपज स्त्री जागरण को केन्द्र में रखकर नारी-विमर्श के अंतर्गत नारी जीवन को विभिन्न दृष्टियों से रेखांकित करने की कोशिश की है। साथ ही उनके उपन्यासों में परम्परागत संस्कारों एवं नवीन जीवन मूल्यों के परस्पर संघर्ष के रेखांकन के साथ इससे उत्पन्न जीवन की विद्रूपताओं, विषमताओं एवं विकृतियों को भी कलात्मक ढंग से अभिव्यक्ति मिली है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. नवलजी, नलन्दा विशाल शब्द सागर, पृ: १४०४.
2. रेखा कस्तवार, स्त्री चिन्तन की चुनौतियों, पृ: १६.
3. आचार्य रामचन्द्र वर्मा, प्रामाणिक हिन्दी कोश, पृ: ९१४.
4. विश्वम्भर उपाध्याय, समकालीन कहानी की भूमिका, पृ: २.
5. नरेन्द्र मोहन, समकालीन कहानी की पहचान, पृ: ०७.
6. गंगा प्रसाद विमल, समकालीन कहानी: दिशा और दृष्टि, समकालीन कहानी जीवन दृष्टि का परिप्रेक्ष्य, पृ: १६६.
7. प्रो. यशपाल उदधृत, अक्षर पर्व, मार्च-२००४.
8. डॉ. रोहिणी अग्रवाल, इतिवृत्त की संरचना एवं स्वरूप, पृ: १०.
9. डॉ. रोहिणी अग्रवाल: समकालीन साहित्य सरहदे और सरोकार, पृ: ३२.
10. सुधीश पचौरी, साइबर स्पेस और मीडिया, पृ: ११.
11. वही, पृ: १०६.
12. मिथिलेश्वर, बाज़ार से लड़ने के लिए बाज़ार होना ज़रूरी है, वागार्थ (पत्रिका) मई २००६, पृ: ६१.
13. जैनमाथुर: आधुनिक विश्व इतिहास, पृ: ९४०.
14. प्रभा खेतान, उपनिवेश में स्त्री, पृ: ५३.
15. डॉ. रमा नवले, मृदुला गर्ग के कथा साहित्य में नारी, पृ: २०.
16. डॉ. उर्मिला गुप्ता, हिन्दी कथा साहित्य के विकास में महिलाओं का योग, पृ: १३४.
17. वही, पृ: ११.
18. मेरे भोज पत्र, पृ: १८.
19. चन्द्रकान्ता, सूरज उगने तक (अपने बारें में), पृ: ६.
20. वही, पृ: १३.

21. चन्द्रकान्ता, मेरे भोज पत्र, पृ: ४२.

22. वही, पृ: ३४.

23. चन्द्रकान्ता, कथा सतीतर (आभार), पृ: ११.